श्री सीता-राम विवाह, विदाई

छन्द :

*** चलि ल्याइ सीतहि सखीं सादर सजि सुमंगल भामिनीं। नवसप्त साजें सुंदरी सब मत्त कुंजर गामिनीं॥ कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं। मंजीर नूपुरकलित कंकन ताल गति बर बाजहीं॥

भावार्थ:

सुंदर मंगल का साज सजकर (रनिवास की) स्त्रियाँ और सखियाँ आदर सहित सीताजी को लिवा चलीं। सभी सुंदरियाँ सोलहों श्रृंगार किए हुए मतवाले हाथियों की चाल से चलने वालीहैं। उनके मनोहर गान को सुनकर मुनि ध्यान छोड़ देते हैं और कामदेव की कोयलेंभी लजा जाती हैं। पायजेब, पैंजनी और सुंदर कंकण ताल की गति पर बड़े सुंदर बज रहे हैं।

दोहा :

*** सोहति बनिता बृंद महुँ सहज सुहावनि सीय। छबि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय॥322॥

भावार्थ:

सहज ही सुंदरी सीताजी स्त्रियों के समूह में इस प्रकार शोभा पा रही हैं, मानो छबि रूपी ललनाओं के समूह के बीच साक्षात परम मनोहर शोभा रूपी स्त्री सुशोभित हो॥322॥

चौपाई :

*** सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई॥ आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूप रासि सब भाँति पुनीता॥1॥

भावार्थ:

सीताजी की सुंदरता का वर्णन नहीं हो सकता, क्योंकि बुद्धि बहुत छोटी है और मनोहरता बहुत बड़ी है। रूप की राशि और सब प्रकार से पवित्र सीताजी को बारातियों ने आते देखा॥1॥

*** सबहिं मनहिं मन किए प्रनामा। देखि राम भए पूरनकामा॥ हरषे दसरथ सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनँदु जेता॥2॥

भावार्थ:

सभी ने उन्हें मन ही मन प्रणाम किया। श्री रामचन्द्रजी को देखकर तो सभी पूर्णकाम (कृतकृत्य) हो गए। राजा दशरथजी पुत्रों सहित हर्षित हुए। उनकेहृदय में जितना आनंद था, वह कहा नहीं जा सकता॥2॥

*** सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला। मुनि असीस धुनि मंगल मूला॥ गान निसान कोलाहलु भारी। प्रेम प्रमोद मगन नर नारी॥3॥

भावार्थ:

देवता प्रणाम करके फूल बरसा रहे हैं। मंगलों की मूल मुनियों के आशीर्वादों की ध्वनि हो रही है। गानों और नगाड़ों के शब्द से बड़ा शोर मच रहा है। सभी नर-नारी प्रेम और आनंद में मग्न हैं॥3॥

***एहि बिधि सीय मंडपहिं आई। प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई॥ तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू। दुहुँ कुलगुर सब कीन्ह अचारू॥4॥

भावार्थ:

इस प्रकार सीताजी मंडप में आईं। मुनिराज बहुत ही आनंदित होकर शांतिपाठ पढ़ रहेहैं। उस अवसर की सब रीति, व्यवहार और कुलाचार दोनों कुलगुरुओं ने किए॥4॥

छन्द :

*** आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुखु पावहीं॥ मधुपर्क मंगलद्रब्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहें। भरे कनक कोपर कलस सो तब लिएहिं परिचारक रहैं॥1॥

भावार्थ:

कुलाचार करके गुरुजी प्रसन्न होकर गौरीजी, गणेशजी और ब्राह्मणों की पूजा करा रहे हैं (अथवा ब्राह्मणों के द्वारा गौरी और गणेश की पूजा करवा रहे हैं)। देवता प्रकट होकर पूजा ग्रहण करते हैं, आशीर्वाद देते हैं और अत्यन्त सुख पा रहे हैं। मधुपर्क आदि जिस किसीभी मांगलिक पदार्थ की मुनि जिस समय भी मन में चाह मात्र करते हैं, सेवकगण उसी समय सोने की परातों में और कलशों में भरकर उन पदार्थों को लिए तैयार रहते हैं॥1॥

*** कुल रीति प्रीति समेत रबि कहि देत सबु सादर कियो। एहि भाँति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंघासनु दियो॥ सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेमु काहुँ न लखि परै। मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कबि कैसें करै॥2॥

भावार्थ:

स्वयं सूर्यदेव प्रेम सहित अपने कुल की सब रीतियाँ बता देते हैं और वे सब आदरपूर्वक की जा रही हैं। इस प्रकार देवताओं की पूजा कराके मुनियों नेसीताजी को सुंदर सिंहासन दिया। श्री सीताजी और श्री रामजी का आपस में एक-दूसरे को देखना तथा उनका परस्पर का प्रेम किसी को लख नहीं पड़ रहा है, जो बात श्रेष्ठ मन, बुद्धि और वाणी से भी परे है, उसे कवि क्यों कर प्रकट करे?॥2॥

दोहा :

*** होम समय तनु धरि अनलु अति सुख आहुति लेहिं। बिप्र बेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहिं॥323॥

भावार्थ:

हवन के समय अग्निदेव शरीर धारण करके बड़े ही सुख से आहुति ग्रहण करते हैं औरसारे वेद ब्राह्मण वेष धरकर विवाह की विधियाँ बताए देते हैं॥323॥

चौपाई :

*** जनक पाटमहिषी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बखानी॥॥ सुजसु सुकृत सुख सुंदरताई। सब समेटि बिधि रची बनाई॥1॥

भावार्थ:

जनकजी की जगविख्यात पटरानी और सीताजी की माता का बखान तो हो ही कैसे सकता है। सुयश, सुकृत (पुण्य), सुख और सुंदरता सबको बटोरकर विधाता ने उन्हें सँवारकर तैयार किया है॥1॥

*** समउ जानि मुनिबरन्ह बोलाईं। सुनत सुआसिनि सादर ल्याईं॥ जनक बाम दिसि सोह सुनयना। हिमगिरि संग बनी जनु मयना॥2॥

भावार्थ:

समय जानकर श्रेष्ठ मुनियों ने उनको बुलवाया। यह सुनते ही सुहागिनी स्त्रियाँ उन्हें आदरपूर्वक ले आईं। सुनयनाजी (जनकजी की पटरानी) जनकजी की बाईं ओर ऐसी सोह रही हैं, मानो हिमाचल के साथ मैनाजी शोभित हों॥2॥

*** कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे॥ निज कर मुदित रायँ अरु रानी। धरे राम के आगें आनी॥3॥

भावार्थ:

पवित्र, सुगंधित और मंगल जल से भरे सोने के कलश और मणियों की सुंदर परातें राजा और रानी ने आनंदित होकर अपने हाथों से लाकर श्री रामचन्द्रजी के आगे रखीं॥3॥

*** पढ़हिं बेद मुनि मंगल बानी। गगन सुमन झरि अवसरु जानी॥ बरु बिलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे॥4॥

भावार्थ:

मुनि मंगलवाणी से वेद पढ़ रहे हैं। सुअवसर जानकर आकाश से फूलों की झड़ी लग गई है। दूलह को देखकर राजा-रानी प्रेममग्न हो गए और उनके पवित्र चरणों को पखारने लगे॥4॥

छन्द :

*** लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली। नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली॥ जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं। जे सुकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलि मल भाजहीं॥1॥

भावार्थ:

वे श्री रामजी के चरण कमलों को पखारने लगे, प्रेम से उनके शरीर में पुलकावली छा रही है। आकाश और नगर में होने वाली गान, नगाड़े और जय-जयकार की ध्वनि मानो चारों दिशाओं में

उमड़ चली, जो चरण कमल कामदेव के शत्रु श्री शिवजी के हृदय रूपी सरोवर में सदा ही विराजते हैं, जिनका एक बार भी स्मरण करने से मन में निर्मलता आ जाती है और कलियुग के सारे पाप भाग जाते हैं,॥1।

*** जे परसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई। मकरंदु जिन्ह को संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई॥ करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं। ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहैं॥2॥

भावार्थ:

जिनका स्पर्श पाकर गौतम मुनि की स्त्री अहल्या ने, जो पापमयी थी, परमगति पाई, जिन चरणकमलों का मकरन्द रस (गंगाजी) शिवजी के मस्तक पर विराजमान है, जिसको देवता पवित्रता की सीमा बताते हैं, मुनि और योगीजन अपने मन को भौंरा बनाकर जिन चरणकमलों का सेवन करके मनोवांछित गति प्राप्त करते हैं, उन्हीं चरणों को भाग्य के पात्र (बड़भागी) जनकजी धो रहे हैं, यह देखकर सब जय-जयकार कर रहे हैं॥2॥

***बर कुअँरि करतल जोरि साखोचारु दोउ कुलगुर करैं। भयो पानिगहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरैं॥ सुखमूल दूलहु देखि दंपति पुलक तन हुलस्यो हियो। करि लोक बेद बिधानु कन्यादानु नृपभूषन कियो॥3॥

भावार्थ:

दोनों कुलों के गुरु वर और कन्या की हथेलियों को मिलाकर शाखोच्चार करने लगे। पाणिग्रहण हुआ देखकर ब्रह्मादि देवता, मनुष्य और मुनि आनंद में भर गए। सुख के मूल दूलह को देखकर राजा-रानी का शरीर पुलकित हो गया और हृदय आनंद से उमंग उठा। राजाओं के अलंकार स्वरूप महाराज जनकजी ने लोक और वेद की रीति को करके कन्यादान किया॥3॥

*** हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई। तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई॥ क्यों करै बिनय बिदेहु कियो बिदेहु मूरति सावँरीं। करि होमु बिधिवत गाँठि जोरी होन लागीं भावँरीं॥4॥

भावार्थ:

जैसे हिमवान ने शिवजी को पार्वतीजी और सागर ने भगवान विष्णु को लक्ष्मीजी दी थीं, वैसे ही जनकजी ने श्री रामचन्द्रजी को सीताजी समर्पित कीं, जिससे विश्व में सुंदर नवीन कीर्ति छा गई। विदेह (जनकजी) कैसे विनती करें! उस साँवली मूर्ति ने तो उन्हें सचमुच विदेह (देह की सुध-बुध से रहित) ही कर दिया। विधिपूर्वक हवन करके गठजोड़ी की गई और भाँवरें होने लगीं॥4॥

दोहा :

*** जय धुनि बंदी बेद धुनि मंगल गान निसान। सुनि हरषहिं बरषहिं बिबुध सुरतरु सुमन सुजान॥324॥

भावार्थ:

जय ध्वनि, वन्दी ध्वनि, वेद ध्वनि, मंगलगान और नगाड़ों की ध्वनि सुनकर चतुर देवगण हर्षित हो रहे हैं और कल्पवृक्ष के फूलों को बरसा रहे हैं॥324॥

चौपाई :

*** कुअँरु कुअँरि कल भावँरि देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं॥ जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी॥1॥

भावार्थ:

वर और कन्या सुंदर भाँवरें दे रहे हैं। सब लोग आदरपूर्वक (उन्हें देखकर) नेत्रों का परम लाभ ले रहे हैं। मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं हो सकता, जो कुछ उपमा कहूँ वही थोड़ी होगी॥1॥

*** राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं। जगमगात मनि खंभन माहीं मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिआहु अनूपा॥2॥

भावार्थ:

श्री रामजी और श्री सीताजी की सुंदर परछाहीं मणियों के खम्भों में जगमगा रही हैं, मानो कामदेव और रति बहुत से रूप धारण करके श्री रामजी के अनुपम विवाह को देख रहे हैं॥2॥

*** दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥ भए मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे॥3॥

भावार्थ:

उन्हें (कामदेव और रति को) दर्शन की लालसा और संकोच दोनों ही कम नहीं हैं (अर्थात बहुत हैं), इसीलिए वे मानो बार-बार प्रकट होते और छिपते हैं। सब देखने वाले आनंदमग्न हो गए और जनकजी की भाँति सभी अपनी सुध भूल गए॥3॥

*** प्रमुदित मुनिन्ह भावँरीं फेरीं। नेगसहित सब रीति निवेरीं॥ राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं॥4॥

भावार्थ:

मुनियों ने आनंदपूर्वक भाँवरें फिराईं और नेग सहित सब रीतियों को पूरा किया। श्री रामचन्द्रजी सीताजी के सिर में सिंदूर दे रहे हैं, यह शोभा किसी प्रकार भी कही नहीं जाती॥4॥

*** अरुन पराग जलजु भरि नीकें। ससिहि भूष अहि लोभ अमी कें॥ बहुरि बसिष्ठ दीन्हि अनुसासन। बरु दुलहिनि बैठे एक आसन॥5॥

भावार्थ:

मानो कमल को लाल पराग से अच्छी तरह भरकर अमृत के लोभ से साँप चन्द्रमा को भूषित कर रहा है। (यहाँ श्री राम के हाथ को कमल की, सेंदूर को पराग की, श्री राम की श्याम भुजा को साँप की और सीताजी के मुख को चन्द्रमा की उपमा दी गई है।) फिर वशिष्ठजी ने आज्ञा दी, तब दूलह और दुलहिन एक आसन पर बैठे॥5॥

छन्द :

*** बैठे बरासन रामु जानकि मुदित मन दसरथु भए। तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपनें सुकृत सुरतरु पल नए॥ भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा। केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यहु मंगलु महा॥1॥

भावार्थ:

श्री रामजी और जानकीजी श्रेष्ठ आसन पर बैठे, उन्हें देखकर दशरथजी मन में बहुत आनंदित हुए। अपने सुकृत रूपी कल्प वृक्ष में नए फल (आए) देखकर उनका शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है। चौदहों भुवनों में उत्साह भर गया, सबने कहा कि श्री रामचन्द्रजी का विवाह हो गया। जीभ एक है और यह मंगल महान है, फिर भला, वह वर्णन करके किस प्रकार समाप्त किया जा सकता है॥1॥

*** तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै। मांडवी श्रुतकीरति उरमिला कुअँरि लईं हँकारि कै॥ कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सीलसुख सोभामई। सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई॥2॥

भावार्थ:

तब वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर जनकजी ने विवाह का सामान सजाकर माण्डवीजी, श्रुतकीर्तिजी और उर्मिलाजी इन तीनों राजकुमारियों को बुला लिया। कुश ध्वज की बड़ी कन्या माण्डवीजी को, जो गुण, शील, सुख और शोभा की रूप ही थीं, राजा जनक ने प्रेमपूर्वक सब रीतियाँ करके भरतजी को ब्याह दिया॥2॥

*** जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै। सो तनय दीन्ही ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै॥ जेहि नामु श्रुतकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी। सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप सील उजागरी॥3॥

भावार्थ:

जानकीजी की छोटी बहिन उर्मिलाजी को सब सुंदरियों में शिरोमणि जानकर उस कन्या को सब प्रकार से सम्मान करके, लक्ष्मणजी को ब्याह दिया और जिनका नाम श्रुतकीर्ति है और जो सुंदर नेत्रों वाली, सुंदर मुखवाली, सब गुणों की खान और रूप तथा शील में उजागर हैं, उनको राजा ने शत्रुघ्न को ब्याह दिया॥3॥

*** अनुरूप बर दुलहिनि परस्पर लखि सकुच हियँ हरषहीं। सब मुदित सुंदरता सराहहिं सुमन सुर गन बरषहीं॥ सुंदरीं सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं। जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं॥4॥

भावार्थ:

दूलह और दुलहिनें परस्पर अपने-अपने अनुरूप जोड़ी को देखकर सकुचाते हुए हृदय में हर्षित हो रही हैं। सब लोग प्रसन्न होकर उनकी सुंदरता की सराहना करते हैं और देवगण फूल बरसा रहे हैं। सब सुंदरी दुलहिनें सुंदर दूल्हों के साथ एक ही मंडप में ऐसी शोभा पा रही हैं, मानो जीव के

हृदय में चारों अवस्थाएँ (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय) अपने चारों स्वामियों (विश्व, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्म) सहित विराजमान हों॥4॥

दोहा :

*** मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि। जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि॥325॥

भावार्थ:

सब पुत्रों को बहुओं सहित देखकर अवध नरेश दशरथजी ऐसे आनंदित हैं, मानो वे राजाओं के शिरोमणि क्रियाओं (यज्ञक्रिया, श्रद्धाक्रिया, योगक्रिया और ज्ञानक्रिया) सहित चारों फल (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) पा गए हों॥325॥

चौपाई :

*** जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुअँर ब्याहे तेहिं करनी॥ कहि न जा कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडपु पूरी॥1॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी के विवाह की जैसी विधि वर्णन की गई, उसी रीति से सब राजकुमार विवाहे गए। दहेज की अधिकता कुछ कही नहीं जाती, सारा मंडप सोने और मणियों से भर गया॥1॥

*** कंबल बसन बिचित्र पटोरे। भाँति भाँति बहु मोल न थोरे॥ गज रथ तुरगदास अरु दासी। धेनु अलंकृत कामदुहा सी॥2॥

भावार्थ:

बहुतसे कम्बल, वस्त्र और भाँति-भाँति के विचित्र रेशमी कपड़े, जो थोड़ी कीमत के न थे (अर्थात बहुमूल्य थे) तथा हाथी, रथ, घोड़े, दास-दासियाँ और गहनों से सजी हुई कामधेनु सरीखी गायें॥2॥

*** बस्तु अनेक करिअ किमि लेखा। कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा॥ लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सबु सुखु माने॥3॥

भावार्थ:

(आदि) अनेकों वस्तुएँ हैं, जिनकी गिनती कैसे की जाए। उनका वर्णन नहीं किया जा सकता, जिन्होंने देखा है, वही जानते हैं। उन्हें देखकर लोकपाल भी सिहा गए। अवधराज दशरथजी ने सुख मानकर प्रसन्नचित्त से सब कुछ ग्रहण किया॥3॥

*** दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासेहिं आवा॥ तब कर जोरि जनकु मृदु बानी। बोले सब बरात सनमानी॥4॥

भावार्थ:

उन्होंने वह दहेज का सामान याचकों को, जो जिसे अच्छा लगा, दे दिया। जो बच रहा, वह जनवासे में चला आया। तब जनकजी हाथ जोड़कर सारी बारात का सम्मान करते हुए कोमल वाणी से बोले॥4॥

छन्द :

*** सनमानि सकल बरात आदर दान बिनय बड़ाइ कै। प्रमुदित महामुनि बृंद बंदे पूजिप्रेम लड़ाइ कै॥ सिरु नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किएँ। सुर साधु चाहत भाउ सिंधु कि तोष जल अंजलि दिएँ॥1॥

भावार्थ:

आदर, दान, विनय और बड़ाई के द्वारा सारी बारात का सम्मान कर राजा जनक ने महान आनंद के साथ प्रेमपूर्वक लड़ाकर (लाड़ करके) मुनियों के समूह की पूजा एवं वंदना की। सिरनवाकर, देवताओं को मनाकर, राजा हाथ जोड़कर सबसे कहने लगे कि देवता और साधु तो भाव ही चाहते हैं, (वे प्रेम से ही प्रसन्न हो जाते हैं, उन पूर्णकाम महानुभावों को कोई कुछ देकर कैसे संतुष्ट कर सकता है), क्या एक अंजलि जल देने से कहीं समुद्र संतुष्ट हो सकता है॥1॥

*** कर जोरि जनकु बहोरि बंधु समेत कोसलराय सों। बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सों॥ संबंध राजन रावरें हम बड़े अब सब बिधि भए। एहि राज साज समेत सेवक जानिबे बिनु गथ लए॥2॥

भावार्थ:

फिर जनकजी भाई सहित हाथ जोड़कर कोसलाधीश दशरथजी से स्नेह, शील और सुंदर प्रेम में सानकर मनोहर वचन बोले- हे राजन्! आपके साथ संबंध हो जाने से अब हम सब प्रकार से बड़े हो गए। इस राज-पाट सहित हम दोनों को आप बिना दाम के लिए हुए सेवक ही समझिएगा॥2॥

*** ए दारिका परिचारिका करि पालिबीं करुना नई। अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीट्यो कई॥ पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमान निधि समधी किए। कहि जाति नहिं बिनती परस्पर प्रेम परिपूरन हिए॥3॥

भावार्थ:

इन लड़कियों को टहलनी मानकर, नई-नई दया करके पालन कीजिएगा। मैंने बड़ी ढिठाई की कि आपको यहाँ बुला भेजा, अपराध क्षमा कीजिएगा। फिर सूर्यकुल के भूषण दशरथजी ने समधी जनकजी को सम्पूर्ण सम्मान का निधि कर दिया (इतना सम्मान किया कि वे सम्मान के भंडार ही हो गए)। उनकी परस्पर की विनय कही नहीं जाती, दोनों के हृदय प्रेम से परिपूर्ण हैं॥3॥

*** बृंदारका गन सुमन बरिसहिं राउ जनवासेहि चले। दुंदुभी जय धुनि बेद धुनि नभ नगर कौतूहल भले॥ तब सखीं मंगल गान करत मुनीस आयसु पाइ कै। दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै॥4॥

भावार्थ:

देवतागण फूल बरसा रहे हैं, राजा जनवासे को चले। नगाड़े की ध्वनि, जयध्वनि और वेद की ध्वनि हो रही है, आकाश और नगर दोनों में खूब कौतूहल हो रहा है (आनंद छा रहा है), तब मुनीश्वर की आज्ञा पाकर सुंदरी सखियाँ मंगलगान करती हुई दुलहिनों सहित दूल्हों को लिवाकर

कोहबर को चलीं॥4॥

दोहा :

*** पुनि पुनि रामहि चितव सिय सकुचति मनु सकुचै न। हरत मनोहर मीन छबि प्रेम पिआसे नैन॥326॥

भावार्थ:

सीताजी बार-बार रामजी को देखती हैं और सकुचा जाती हैं, पर उनका मन नहीं सकुचाता। प्रेम के प्यासे उनके नेत्र सुंदर मछलियों की छबि को हर रहे हैं॥326॥

मासपारायण, ग्यारहवाँ विश्राम